International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

नवजागरणकालीन भारत की युगीन परिस्थितियों का विश्लेषण

शर्मिला राठी (शोधार्थी)
हिन्दी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध सार–

भारतीय साहित्य के इतिहास अध्ययन के अंतर्गत 19वीं सदी के आधुनिकीकरण की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया और विकास के लिए नवजागरण शब्द बहुत ही लोकप्रिय है। नवजागरण ईटली मे हुई रिनेसां का हिन्दी पर्याय रूप में प्रयुक्त होता है। नवजागरण का प्रभाव मध्ययुगीन सामंती वैभव और विलास की जगह विचार, विज्ञान और मानव की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु संघर्ष रूप मे सामने आया। डा. कृष्ण दत्त पालीवाल के शब्दों मे आधुनिक युग हिन्दी साहित्य की विद्रोहमूलक परंपरा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल है और 19वीं सदी भारतीय जन–जीवन और साहित्य के क्षेत्र मे क्रांति, नवोत्थान तथा आधुनिकता के निरंतर विकसित होते प्रभाव की शताब्दी रही है। भारत मे अंग्रेजों के साथ आए बद्लाव का विस्तृत अध्ययन नवजागण के दौरान उभरती तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ मे हुआ है।

मुख्य शब्द– पराधीनता, हस्तक्षेप, आधुनिकीकरण, निरंकुशता, उपनिवेश, प्रभुत्व।

नवजागरणकालीन भारत की युगीन परिस्थितियों का विश्लेषण

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का सुत्रपात भारतेन्दु–युग में हुआ, पर भारत के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का प्रारम्भ तभी से हुआ जब प्लासी के युद्ध (1757 ई0) में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने नवाब सिराजुछौला को हराया था। इस हार के बाद बंगाल में व्यापारिक उद्देश्य से आए अंग्रेजों का बंगाल पर प्रशासनिक वर्चस्व उत्पन्न हुआ। प्लासी के युद्ध में विजय के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 1764 ई0 में 'बक्सर के युद्ध' में मुगल–सम्राट शाह आलम को पराजित कर बंगाल, बिहार और उड़िसा की दीवानी हासिल की। प्लासी और बक्सर की जात ने भारत में उनके शासन के मार्ग को प्रशस्त कर दिया। किंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि भारतीयों ने अंग्रेजों की पराधीनता सहज स्वीकार कर ली। 1757 ई0 से 1857 ई0 के 'प्रथम स्वाधीनता संग्राम' के मध्य तक

स्थानीय स्तर पर, अंगेजों के विरूद्ध निरंतर विद्रोह होते रहे। वहीं इसी दौरान भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अन्य यूरोपीय व्यापारी कम्पनियों के लिए कड़ी चुनौती खडी कर दी थी। व्यापारिक केन्द्रों के साथ–साथ अंग्रेजों ने भारतीय राजनीति में भी हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया था। अंग्रेजों के बढ़ते प्रभाव को वर्णन डॉ0 रजनी कोठारी के शब्दों में – ''ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने फ्रांसीसियों को हरा कर (यूरोप के सप्तवर्षीय युद्ध से लाभ उठा कर) यहाँ (भारत में) अपनी प्रधानता कायम की। इसके बाद जर्जर मुगल साम्राज्य से व्यापक सुविधाएँ बड़े–बड़े क्षेत्रों पर आर्थिक और प्रशासनिक अधिकार प्राप्त किए।''[1]

1. राजनीतिक परिदृश्य – 1757 ई0 से 1857 ई0 के मध्य अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत पर राजनीतिक प्रभुत्व कायम करने के लिए विभिनन स्थानीय राजाओं से युद्ध किए। जिनमें मैसूर के नवाब हैदर अली और उनके पुत्र टीपू सुल्तान ने लम्बें समय तक युद्ध के माध्यम से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की पराधीनता को अस्वीकार किया। 1792 ई0 में टीपू सुल्तान की हार से दक्षिण भारत में एकाधिकार प्राप्त हुआ। संपूर्ण भारत पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए अंग्रेजों ने 1803 ई0 में असी और लासवारी के युद्धों में पारस्परिक फूट और संघर्ष से क्षीण पेश्वाओ ंकी संघशक्ति को समाप्त किया 1849 ई0 को सिक्खों की पराजय से संपूर्ण भारत पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का एकाधिकार हो गया। लेकिन 1856 ई0 में अवध राज्य को बलपूर्वक कम्पनी के अधीन करने की नीति ने 1857 ई0 के 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' में महत्ती भूमिका अदा की।

कम्पनी के साथ समझौतों को निभाने में देशी राजा अंग्रेजों से अत्यधिक सूद पर भारी कर्ज लेने के लिए बाध्य थे। जब परेशानी की अति हुई तो ऋणदाताओं ने क्रूरतापूर्वक 'पेंच कस दिया, और राजाओं को विवश कर दिया कि या तो सौहार्दपूर्वक कम्पनी को अपनी रियासतें सौंप दें या युद्ध आरम्भ करें, एक विकल्प में उन्हें अपने ऋणदाताओं का पेंशनभोगी होना था, और दूसरे विकल्प में विश्वासघाती के रूप में अपदस्थ होना था। ऐसे समय में, हिन्दुस्तानी रियासतों के कब्जे में 6,99,961 वर्ग मील जमीन थी जिसकी कुल आबादी 5,29,41,263 थी, जो मित्र नही बल्कि विभिन्न प्रकार की पूरक एवं सुरक्षात्मक व्यवस्थाओं के तहत विभिन्न शर्तों के साथ अंग्रेजी सरकार पर निर्भर थी। इन व्यवस्थाओं में जो सामान्य था, वह यह कि हिन्दुस्तानी रियासतों के पास, बिना गवर्नर जनरल के हस्तक्षेप के, न आत्मरक्षा का अधिकार है, न राजनयिक संबंध कायम करने का और न आपसी विवाद के निपटारों का।

''जिन स्थितियों में इन्हें अपने आभासी/दृश्य/ऊपरी स्वाधीनता को कायम रहने दिया गया है, वे साथ–ही–साथ, निरंतर क्षरण और सुधार की निरी अक्षमता की स्थितियाँ है। अवयवी कमजोरी उनके सिद्धांत का संवैधानिक नियम है, उस समूचे अस्तित्व की तरह जो ताबेदारी पर जीवित है।''[2]

यह उन बुराइयों का वास्तविक चित्रण है जो उन समझौतों, शर्तों से उत्पन्न हुई थी। लार्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी आकांक्षाओं ने भारत में अशांति और विद्रोह की चिंगारी को सुलगा दिया था, जिसके चलते भारत में राष्ट्रवाद, हिन्दू'–मुस्लिम एकता और औपनिवेशिक गुलामी से छुटकारा पाने के लिए सांझा प्रयास की भावना को बल मिला। 1857 ई0 की क्रांति के मुख्य कारण अंग्रेजों की भूमि व्यवस्था, शोषण और लूट, शासन प्रणाली राजनैतिक रूप से भारत पर संप्रभुता कायम करने के लिए किसी भी तरीके और किसी भी हद तक जाकर ब्रिटिश कम्पनी को मुनाफा पहुँचाने की व्यवस्था थी। जिसने चाहे अनचाहे भारतीय जनता को एक करने में अपनी महत्ती भूमिका अदा की और इसी असंतोष ने सभी धर्म और वर्ग के लोगों को एक जुट होकर बगावत करने के लिए तैयार किया।

सन् 1857 ई0 की क्रांति के पीछे कुछ विद्वान चर्बी वाले कारतुसों को मुख्य कारण मानते है। रामविलास शर्मा इस मुद्दे की जड़ तक पहुँच कर इसके पीछे की सच्चाई से रूबरूकरवाते हुए कहते हैं कि – ''बहुत जगह सिपाहियों ने कारतूसों को चलाने पर आपत्ति की। कारतूस इतने गंदे थे कि उन पर हिन्दुओं–मुसलमानों को ही नहीं ईसाई अंग्रेजों को भी आपत्ति थी। कानपुर में मल्लाहों पर गोली चलाने वाले कैप्टेन मोब्रे टोमसन ने लिखा था कि जो कारतूस इंग्लैण्ड से आये थे, वे ''निःसंदेह फिरंगियों और धर्मानुयाइयों दोनों के लिए अत्यंत घृणित थे'', उसने यह भी लिखा था कि ''उनकी दुर्गन्ध से यदि विद्रोह न फैल सकता था जैसा कि कहा जाता है तो कम से कम महामारी अवश्य फैल सकती थी।''[3]

निःसंदेह 1857 ई0 का गदर भारत का 'प्रथम स्वाधीनता संग्राम था। किन्तु इसकी असफलता के पश्चात् भारत का शासन कम्पनी की ब्जाय महारानी विक्टोरिया के हाथों में आ गया और भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया। 1857 ई0 व्यापक स्तर पर हुए विद्रोह ने अंग्रेजों को सचेत कर दिया भारत पर अपनी पकड़ को बनाए रखने के लिए उन्होंने प्रशासनिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक नीतियों में परिवर्तन किया। अंग्रेजी सेना में से भारतीय सैनिकों की संख्या

काफी कम कर दी गई। मजहबी एकता कायम न हो सके इसके लिए 'घुडसवार सेना' में केवल मुसलमानों को भर्ती किया गया और पैदल सेना में हिन्दुओं को। इसके साथ–साथ हिन्दु और मुसलमानों में फूट डालने के लिए उन्हें दिए जाने वाले वेतनमानों में भी असंगतियाँ उत्पन्न की गई।

अंग्रेजों ने भारत में अपनी राजनैतिक पकड़ मजबूत बनाए रखने के लिए अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार–प्रसार किया। जिसके चलते अंग्रेजी भाषा में पढ़े–लिखे लोगों का निचले स्तर की नौकरियाँ मुहैया करवाकर अंग्रेजों ने अपनी राजनैतिक आकांक्षाओं को पूरा किया किन्तु भारत में वैचारिक बौद्धिकता एवं प्रतिभा की कमी कभी नहीं रही और अन्य उस काल में पराधीनता के बावजूद अंग्रेजी शिक्षा माध्यम से यूरोपीय साहित्य, दर्शन और संस्कृति का अध्ययन–मनन कर भारत की परावशता के कारणों एवं उसके निवारण की पृष्ठभूमि तैयार की और उसे असली जामा भी पहनाय अंग्रेजी माध्यम से साक्षर नवयुवकों से जहाँ शासन–व्यवस्था को ब्रिटिश कर्मचारियों के स्थान पर सस्ता श्रम उपलब्ध हो सका वहीं साथ–साथ भारत में विद्यालयों, विश्वविद्यालयों की स्थापना से पाश्चात्य विचारधाराओं से भारतीयों से सम्पर्क भी सधा।

1852 ई0 में संग्राम को दबाने के लिए भारत का शासन ब्रिटिश मंत्रि–मण्डल के हाथ में चला गया और 1 नवम्बर, 1958 ई0 को ब्रिटिश सम्राज्ञी विक्टोरिया का घोषणा पत्र लागू हुआ जिसमें यह विश्वास दिलाया गया कि ''प्रजा के लोग चाहे वे किसी जाति, रंग और धर्म के हो, बिना किसी रोक–टोक और भेदभाव के सरकारी नौकरियों में शिक्षा, योग्यता और कार्यक्षमता के अनुसार भर्ती किये जायेंगे। देशी राजाओं के अधिकारों प्रतिष्ठा और गौरव को अपने अधिकारों, प्रतिष्ठा तथा गौरव के समान ध्यान रखा जाएगा। किसी व्यक्ति को उसकी धार्मिक भावनाओं तथा विश्वासों के कारण पक्षपात, उपेक्षा घृणा अथवा अयोग्यता से सम्मान तथा पक्षपात रहित सुरक्षा प्राप्त होगी।''[4] महारानी विक्टोरिया के वक्तव्य से भारतीय जनता में उम्मीद का संचार हुआ किन्तु यह भ्रम ही साबित हुआ क्योंकि अंग्रेज भारत में उपनिवेश स्थापित करना चाहते थे और इसी कड़ी को मजबूतकरने के लिए उन्होंने 1857 ई0 के विद्रोह पर काबू पाने में व्यय हई रकम को भारतीय से ही वसूलने के लिए 'चाशनीमें भिगे' घोषणा पत्र को लागू करने की बात कहीं। सत्ता हस्तांतरण सिर्फ एक माध्यम था, जिससे कि भारतीयों को अतीत के दर्द से क्षणिक राहत की अनुभूति प्रदान की जा सकें।

19वीं सदी के उत्तराई में ब्रिटिश ताज के अधीन भारत में भूखमरी, अकाल के कारण लाखों लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। ये सब अंग्रेजों की उन नीतियों का दुष्प्रभाव था जिसके चलते भारत सेनिर्यात की जाने वाली वस्तुओं की संख्या बहुत अधिक थी। अब भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में कच्चा माल प्रमुख हो गयाः जैसे– रूई, नील, अफीम, जूट, तिलहन, मसाले, काफी, चाय, अनाज आदि। आँकडों के अनुसार सन् 1813 में भारत से 90 लाख पौंड कपास बाहर गया जो सन् 1833 ई0 में बढ़कर 3 करोड़ 20 लाख पौंड और सन् 1844 में 8 करोड़ 80 लाख पौंड हो गई। सन् 1833 ई. में 3.7 हजार पौंड भेड़ों की उन बाहर गई जो 1844 में बढ़कर 27 लाख पौंड हो गई। सन् 1833 में 2100 तिलहन बाहर गया जो 1844 में बढ़कर 2,37,000 हो गया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इंग्लैण्ड की जरूरत से अधिक निर्यात किया गया और भारतीय जनता भूखी रही। 1844 में 8½ लाख पौंड से अधिक कीमत का अनाज निर्यात किया गया। बागानों में वृद्धि नील की अधिक खेती के लिए दबाव अफीम की बंधुआ मजदूरी तथा रूई के अधिक उत्पादन का भी खाद्यान्नों पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिसके चलते शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 14 बार अकाल पड़े जिनमें सरकारी आँकड़ों के अनुसार 2 करोड़ (अनुमानतः) लोगों की जानें गई।''[5]

19वीं सदी के मुक्त व्यापार से उत्पन्न अन्तर्विरोधों तथा 1857 के विद्रोह के परिणामों में अंग्रेजों को मजबूर कर दिया कि यदि वे भारत पर अपने राजनीतिक वर्चस्व को बनाए रखना चाहते है तो उन्हें अपनी नीति में परिवर्तन लाना होगा। इसलिए न केवल सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने क लिए भी अंग्रेजों ने सड़कों का विकास सिंचाई का विकास नई रेल लाइनों का निर्माण, विद्युत–टेलिग्राम प्रणाली का विकास, देश भर में एक जैसी डाकव्यवस्था आदि बातों पर काम करने की आवश्यकता महसूस की। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप आम जनता के साथ–साथ प्रशासनिक स्वार्थों की भी हित पूर्ति संभव हुई। "सन् 1860 के बाद ब्रिटिश पूंजी भारत में बड़े पैमाने पर नियोजित होने लगी। भारत में पूंजी लगाने के मुख्य क्षेत्र थे – सरकार को ऋण, रेल निर्माण, सिंचाई परियोजनाएँ, चाय, कॉफी और रबड़ के बाग, कोयलाखाने, जूट मिलें, जहाजरानी, ट्राम–वे और बैंकिंग आदि।''[6]

ब्रिटिशों ने भारत के राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में पूंजी का विनियोजन किया ताकि वे साम्राज्यवादी नियंत्रण को सुदृढ़ कर सकें। 1876 ई0 में लार्ड लिटन भारत के वायसराय बनकर आए, जिनकी साम्राज्यवादी नीतियों के चलते दूसरा अफगान युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्ध में

भारतीयों को जन और धन की बहुत हानि उठानी पड़ी। लार्ड लिटन के शासनकाल में लिए गए निणर्यों के दुष्प्रभावों को 'ब्राह्मण–पत्र' मे इस तरह प्रकाशित किया गया – "सन् 1878 ई0 में लंकाशायर के मिल मालिकों के शोर मचाने पर भारतीय मिलों के कपड़ों पर रोक लगा दी गई, जिससे भारतीय कपड़े की खपत कम हो गई। सिविल सर्विसिज में परीक्षा मे बैठने वालों की उम्र घटाने का कारण भारतीयोंको इस परीक्षा में न बैठने देना ही था। इससे भारतीयों में बड़ी प्रतिक्रिया हुई।''[7]

1870 ई0 से लेकर 1916 ई0 तक के औपनिवेशिक भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ काफी उथल–पुथल भरी रही है। यह समय अंग्रेजों के साथ–साथ भारतीयों के लिए भी विशेषरूप से महत्वपूर्ण रहा है। अंग्रेजों के लिए भारत में पुनः अपने प्रभुत्व को बनाए रखना एक बड़ी चुनौती थी। जिसके लिए उन्होंने समय–समय पर विभिन्न कानून बनाए। हुकूमत को बरकरार रखने की साजिश थी। 1885 ई0 में कांग्रेस की स्थापना के बाद कांग्रेस द्वारा सरकार से संवैधानिक सुधारों की मांग भारत के साथ इंग्लैंड में भी चर्चा का विषय बनी। जिसके फलस्वरूप 1892 ई0 में 'भारतीय परिषद ऐक्ट' नामक कानून स्वीकृत हुआ। किन्तु उक्त ऐक्ट द्वारा प्रदत्त अधिकारों का गलत क्रियान्वयन भारतीय में असंतोष की लहर जगा गया।

भारत में 'राष्ट्रीय एकता' के सूत्रपात में परोक्ष–अपरोक्ष रूप से कांग्रेस का योगदान महत्वपूर्ण है। कांग्रेस का जन्म भारत में एक ऐसी संस्था के रूप में किया गया था जोकि मूलतः अंग्रेजों की पक्षधर हो। किन्तु तत्कालीन आवश्यकताओं के कारण यह संस्था अंग्रेजों की पक्षधर न होकर भारतीयों की हितैषी साबित हुई। इस संस्था की पहुँच भारत के बौद्धिक वर्ग के साथ–साथ आम जनता तक भी हुई। कांग्रेस ने अंग्रेजी हुकुमत के साथ रहकर उनकी कार्यप्रणाली की आंतरिक व्यवस्था को पहचाना। जिसका मकसद उदारवादी रूप अख्तियार कर भारतीय जनता के धन को जोंक की भाँति चूसना था। भारतीय अंग्रेजी शासन के मूल को पहचान गए थे कि उनके लिए समानाधिकार जैसी बातें सिर्फ दिखावा मात्र है। क्योंकि 'इल्बर्ट–बिल'(2 फरवरी, 1883 ई0) का अंग्रेजों ने ही घोर विरोध किया था।"[8]

भारत मे अंग्रेजी कचहरियों की कार्यवाही काफी पेचींदा थी, क्योंकि अनपढ़ जनसाधारण के लिए समझ से बाहर थी। भारत में रिश्वतखोरी के व्यापक प्रचलन की बात करें तो वह अंग्रेजी

शासनकाल की ही देन है। कोर्ट–कचहरियों में आए दिन झूठे गवाह, नकली कागजात पैसों के दम पर खरीदें जाते थे। वकीलों को मोटी रकम दिए बगैर अपने हक को प्राप्त कर पाना गरीब भारतीय जनता के बस की बात नहीं थी। इसलिए आम जनता में यह धारणा प्रबल रूप से प्रचलित हो गई थी कि अंग्रेजी हुकूमत के बनाए गए कानून आम लोगों की बर्बादी के लिए ही हैं।

1906 ई0 'मुस्लिम लीग' की स्थापना के साथ–साथ दादा भाई नौरोजी के 'स्वराज्य–प्रस्ताव' के लिए भी याद की जाती है। इसी वर्ष वायसराय 'मिण्टो' ने भारत–सचिव 'मार्ले' के साथ मिलक 'मिण्टो–मार्ले–सुधार योजना' का श्री गणेश किया। जिसका परिणाम भारतीयों की राष्ट्रीय–आंदोलन में बढ़ती रूचि के रूप में सामने आया। साथ ही साथ अंग्रेजी शासन–व्यवस्था की कमजोरियों का पता भी चला।

2. सामाजिक परिस्थितियाँ – भारत में अंग्रेजी शासन व्यवस्था से पूर्व भी यहाँ की सामाजिक स्थिति उलझी हुई थी। गुलाम देश के आक्रमणों ने हिन्दु सामाजिक रीतियों में अनेक कुरीतियों को जन्म दिया, जिनमे बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, बहु–विवाह, अनमेल–विवाह, सती–प्रथा आदि हैं। मूलतः ये सारी की सारी प्रथाएँ परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से स्त्रियों की पराधीन स्थितिका आंकलन ही हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। चूँकि स्थितियाँ चाहे जिस भी वजह से बदले उनका मूल्य सदैव स्त्री ही चुकाती आई है और पूर्वोत्तर सामाजिक स्थिति समय–दर–समय बदतर रूप धारण करती रही। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् उनका भारतीय जनजीवन को शीघ्रता से प्रभावित करने का एक कारण – "भारतीय समाज में व्याप्त धर्म एवं वर्णगत विभेदता – कहीं न कहीं अंग्रेजों के अनुकूल रही। विद्याहीन ब्राह्मण वर्ग की संकीर्णताओं से जर्जर हिन्दु समाज बाहरी प्रलोभनों के प्रभाव से ज्यादा वक्त दूर नही रह सका और अंग्रेजों के हित में ढलने लगा। किंतु जाने–अनजाने अंग्रेजों की नीतियाँ भारतीयों को जागृत करने का सुअवसर प्रदान करती गई जिसके प्रभावस्वरूप सर्वप्रथम पाश्चात्य साहित्य एवं संस्कृति के संपर्क में आए बंगाल के मध्यवर्गीय शिक्षितों ने खोखली परम्पराओं की ओर भारतीयों का ध्यानाकर्षित किया। बंगाल में ब्रह्मसमाज' के संस्थापक राजा राममोहन राय ने सती प्रथा जैसी अमानुषिक कुप्रथा के विरूद्ध आवाज बुलंद की और 1829 ई0 में इस पर पाबंदी लगी। सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध बंगाल में अनेक आंदोलन चले। जिनमें ईश्वर चंद विद्यासागर द्वारा विधवा–विवाह के समर्थन में चलाया गया। उनका आंदोलन काफी प्रभावशील रहा। एक ओर जहां कुलीन वर्ग के लोगों द्वारा उनका विरोध हुआ, वहीं शिक्षित मध्यवर्ग ने उनका अनुशरण किया।

बंगाल में जहाँ राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद विद्यासागर और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने तो पंजाब में स्वामी दयानंद सरस्वती ने बाल–विवाह, मादकद्रव्य निषेध और रात्रि–पाठशालाओं के प्रचार द्वारा उत्तर भारतीय सामाजिक स्थितियों में बदलाव का श्रीगणेश किया। डॉ0 रवीन्द्र सहाय वर्मा, सुधारवादी आंदोलनों के प्रेरणा स्त्रोतों को इंगित करते हुए कहते हैं कि – ''इन सामाजिक आंदोलनों की प्ररेणा, पश्चिम से ही आई पर साथ में यह कहना भी ठीक है कि इन आंदोलनों की प्रगति अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार के साथ–साथ हुई।''[9]

वही लक्ष्मीनारायण गुप्त उत्तर भारत में आर्य समाज के प्रभाव को रेखांकित करते हुए कहते है कि – ''आर्यसमाज के प्रचार ने एक बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया, जिसका प्रभाव साहित्य पर पड़ा। वह है नारी–जागरण का कार्य। लगभग 200 वर्षों से 19वीं शताब्दी के अंत तक हिन्दी–साहित्य एवं काव्य में स्त्रियों का बड़ा हीन चित्रण किया गया था। नायिका भेद के जाल में जकड़कर उन्हें एकमात्र उपभोग की सम्पत्ति बना रखा था। ..... अंधविश्वास और रूढिवाद में उलझे हुए हिन्दु–समाज ने उन्हें पूर्णतया घर की चारदीवारी में बंद कर रखा था। ..... आर्यसमाज ने स्त्रियों को ऐसी दशा देखकर उनका भी उद्धार किया, उन्हें अर्धागिनी का पद दिलाया, परदा–प्रथा के गर्त से बाहर निकाला, उन्हें शिक्षित किया और सीता और सावित्री का आदर्श उनके सन्मुख रखा।''[10] बंगाल के साथ पूरे भारत में सामाजिक असमानताओं के विरूद्ध आवाज उठाई गई। जिनमें महाराष्ट्र एवं दक्षिण भारत में रानाडे, ज्योति बा फुले, कवि नर्मद, स्वामी दयानन्द सरस्वती, वीरेशलिंगम आदि विद्वानों ने न केवल स्त्री–शिक्षा के महत्व पर बल दिया अपितु सामाजिक असमानताओं के लिए जातिगत छुआछूत को भी महत्वपूर्ण कारक माना। महाराष्ट्र के ज्योति बा फूले एवं उनकी धर्मपत्नी सावित्री बाई फूले ने स्त्री–शिक्षा के साथ–साथ धर्मान्ध अस्पृश्यता के विरूद्ध भी आवाज बुलंद की। ''सावित्री बाई फूले'' तो भारत की प्रथम भारतीय 'महिला शिक्षक' के रूप में जानी जाती है। उन्होंने 1857 ई0 में पहले कन्या–विद्यालय की शुरूआत भी की। उनके समाज सुधार के कार्यों का समाज के सम्पूर्ण ढांचे पर असर दिखा।

अंग्रेजी शासन की नीतियों के विश्लेषण से यह तथ्य उभरकर आता है कि कम्पनी के आर्थिक हित के लिए जहाँ वे शिक्षागत बदलाव एवं उनके क्रियान्यवन पर बल देते दिखे, वहीं सामाजिक बदलाव के लिए अंग्रेजों ने भारतीय सामाजिक पृष्ठभूमि में बदलाव से जैसे खुद को अलग–थलग ही रखा। ताकि भारतीयों के धार्मिक विभेदीकरण के आधार पर उन्हें लम्बे समय तक

अपने हाथ की कठपुतली बना कर रखा जा सके। जिसकी पुष्टि करते हुए वैभव सिंह कहते हैं कि – ''राजनीतिक प्राथमिकताएँ प्रायः आर्थिक हितों से प्रभावित होती है और इसीलिए भारत की परंपरागत सामाजिक संस्थाओं को तोड़ना ब्रिटिश सरकार के लिए नामुमकिन ही नही बल्कि गैर जरूरी मकसद भी थी।''[11] ऐसे मे ब्रिटिश सत्ता कोई भी सामाजिक बदलाव करने से झिझक रही थी। ब्रिटिश सत्ता की झिझक वारेन हेस्टिंग्ज के इन शब्दों में साफ–साफ झलकती है – ''उत्तराधिकार, विवाह, जाति और संस्थाओं के अन्य उपयोग से संबंध में मुस्लिमों के लिए कुरान के कानूनों और हिन्दुओं के लिए शास्त्रों के कानून का पालन किया जाएगा। ऐसे सभी अवसरों पर मौलवियों या ब्रह्मणों को कानून की व्याख्या के लिए बुलाया जाएगा। वे रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करेंगे और शासनादेशों को पारित करने में सहायक होंगे।''[12]

वारेन हेस्टिंग्ज के ये शब्द युगीन भारतीय सामाजिक असमानताओं की तरफ ध्यान दिलाती हैं कि ''हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही सामाजिक संस्थाएँ भारत के एकता के विरूद्ध अलग–अलग होकर कार्यलीन थी। लेकिन शिक्षित, जागरूक एवं सतत् प्रयत्नशील मध्य वर्ग ने लोगों को धर्मगत एवं जातिगत विभेदों से ऊपर उठ एक जुट होकर स्वाधीन भारत के लिए प्रयत्नशील होने का मूलमंत्र दिया जिसने लोगों को उदार, आधुनिक होने के साथ–साथ राष्ट्र–प्रेम की भावना से ओत–प्रोत भी किया।

3. आर्थिक परिस्थितियाँ – अंग्रेजों के भारत आगमन से पहले भारत की अर्थव्यवस्था अपने मूल रूप में ग्रामीण और संतुलित भी थी। क्योंकि उसके मुख्य स्तंभ – 'कृषि एवं हस्तकला और कुटीर उद्योग भारतीयों की आवश्यकताओं की पूर्ति आपस में ही पूरी करने में सक्षम थे। औद्योगिकीकरण के अभाव में भारतीय अर्थव्यवस्था आधुनिक एवं शहरीय अर्थव्यवस्था से अनभिज्ञ थी। गांव अपने में आत्मनिर्भर थे। जिन वस्तुओं की आवश्यकताएँ होती थी उनका उत्पादन गाँवों में ही हो जाता था और बाकी को कभी आपसी विनिमय के माध्यमसे गाँव के भीतर ही संपन्न्न हो जाती थी। जैसे किसान खेती कर अन्न उगाता था, तो दूसरे कारीगर (लुहार, बढई, चर्मकार, कुम्हार और बुनकर आदि) अन्य वस्तुओं की पूर्ति करते थे। भारत के गाँवों की आंतरिक संरचना एवं अर्थव्यवस्था के विषय में मार्क्स ने लिखा है कि – ''ग्राम प्रमुख न्यायाधीश, पुलिस और तहसीलदार का मिला जुला रूप है। बहीखाता रखनेवाला जुझ का हिसाब ही रखता है। एक पदाधिकारी विशेष अपराधियों का चालान करता है और दूसरे गाँव की सीमा तक पहुँचा देता है,

सीमा रक्षक पड़ोसी समुदायों से गाँव की चौहछी की रक्षा करता है, पानी का ओवर सियर सामूहिक जलाशयों से सिंचाई के लिए पानी का बंटवारा करता है।''[13]

गाँवों की तरह भारतीय शहरों की अर्थव्यवस्था भी अपनी आतंरिक संरचना में आपसी विनिमय पर ही निर्भर थी। भारत की हस्तकला एवं दस्तकारी की विदेशों तक में धूम थी। भारतीय हस्तकला एवं दस्तकारी उद्योग सदियों से चला आ रहा था और राजघरानों के संरक्षण से ये अपने हुनर में माहिर थे। जिस कारण उच्च कोटि की कलात्मकता भारतीय हस्तनिर्माण सामान को ऊँची कीमत और नाम दोनों प्रदान करने में सहयोगी रही। भारतीय सामान की तारीफ में कैलबर्टन ने लिखा है कि –''प्राचीन काल में जब रोम ने निजी और सार्वजनिक भवनों में भारतीय कपड़ों, दीवारदारी, तामचीनी, मोजेक हीरे जवाहरात आदि का उपयोग होता था, उस वक्त से औद्योगिक क्रांति के प्रारम्भ तक, आकर्षक और उद्दीक वस्तुओं के लिए सारा संसार भारत का मोहताज रहा।''[14]

भारतीय अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ने में राजनैतिक निर्णयों ने अहम भूमिका निभाई। अंग्रेजी शासन ने इंग्लैण्ड को फायदा पहुँचाने के लिए भारतीय श्रम, संसाधन एव ंधन का जम कर दुरूपयोग किया। टैक्स को बढोतरी, नील–बागानों की खेती को प्रोत्साहन, अंग्रेजी सामान पर टैक्स छूट आदि कई महत्वपूर्ण कदम भारत की दयनीय आर्थिक विकास की समीक्षा करते हुए 1881 ई0 में मार्क्स लिखते हैं कि – ''हर साल अंग्रेज भारतीयों से लगानों, रेलों के लाभांश– जिन रेलों से भारतीयों को कोई लाभ नहीं पहुँचाता, सैनिक तथा असैनिक कर्मचारियों की पेंशनों, अफगानिस्तान की लड़ाई तथा अन्य लड़ाईयों के खर्च इत्यादि में भारी रकमें वसूल करते हैं। इन रकमों के बदले भारतीयों को कुछ नही मिलता। ये रकमें उन रकमों से अलग है, जिनसे अंग्रेज भारत के अंदर हर साल अपनी जेबें भरते हैं।''[15]

भारतीय उद्योग–धन्धों की तबाही पर 1890 ई0 में सर हेनरी कॉटन लिखते है कि – ''अभी सौ साल भी नहीं बीते जब ढाका से 1 करोड़ रूपये का व्यापार होता था और वहाँ 2 लाख आदमी बसे हुए थे। 1787में 30 लाख रूपय की ढाका की मलमल इंग्लैंड आयी थी। 1817 में उसका आना बिल्कुल बंद हो गया। कताई–बुनाई की कला, जो युगों से अनगिनत औद्योगिक जनसंख्या को रोजगार धंधा देती रही, अब खत्म हो गयी है। जो सम्पन्न परिवार थे, वे अब मजबूर होकर रोटी

की तलाश में शहर छोड़कर गाँव भाग गये हैं ..... कोई भी ऐसा साल नहीं जाता, जब कमिश्नर या जिले के हाकिम सरकार को इस बात की सूचना न देते हों कि हर तरफ उद्योग धंधों के लोग चौपट हो रहे हैं।''[16]

शहरों से गाँव और गाँव से शहरों में पलायन का कारण नेविगेशन एक्ट था। जिसके चलते यूरोप या अन्य किसी भी देश के साथ भारत का सीधे–व्यापार करने के अधिकार का हनन ब्रिटिश शासन व्यवस्था ने की।

बीसवीं सदी के आरम्भिक दशकों में तो हालात यह हो गई कि यूरोपीय पूंजीपतियों के लिए भारत में फायदा का मुख्य साधन व्यापार ने रहकर पूंजी–निवेश हो गया था। प्रमाण के लिए आंकड़े लीजिए। भारत में लगी ब्रिटिश पूंजी 1911 में 675 करोड़ रूपये और 1914 ई. में 700 करोड़ 50 लाख रूपये थी। 1913–14 में ब्रिटिश पूंजीपतियों को भारत में लगी ब्रिटिश पूंजीपतियों को भारत में लगी ब्रिटिश पूंजी से कुछ खरा मुनाफा 60 करोड़ रूपये हुआ जबकि उसी साल व्यापार से उन्हें मुनाफा सिर्फ 42 करोड़ रूपये ही हुआ।''[17]

इन सभी प्रमाणों से ये स्पष्ट जाहिर हो जात है कि भारत में अंग्रेजोंके आने से पहले की आत्मनिर्भर भारतीय व्यवस्था, कलात्मक उच्चकोटि से सम्पन्न हस्तकला एवं दस्तकारी उद्योग, अपनी–अपनी आवश्यकता को आपस में हल करने और चरखें के माध्यम से पूरा करने में सक्षम गाँव अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् पूर्णतः पर–निर्भर एवं दर–दर की ठोकरे, भूख एवं बीमारी से ग्रस्त जीवनजीने को अभिशप्त हो गए थे।

4. धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ – अगर हम 1870 ई0 से 1916 ई0 तक की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की बात करें, तो वे भी कहीं ना कहीं अंग्रेजी षड्यंत्रों एवं स्वार्थ से परिचालित मिलेंगी। सर्वविदित है कि भारत में अपनी पकड़ को मजबूत बनाने और बनाये रखने में ''फूट डालों और राज करो'' की नीति का अनुशरण किया गया क्योंकि अंग्रेजों ने व्यापारियों के रूप में भारत प्रवेश के बाद राजनैतिक सत्ता पर काबिज होने के लिए भारतीय जीवन–शैली और उसे प्रभावित करने वाले कारकों का विस्तृत अध्ययन मनन करने के बाद ही ''Divide and rule''का अनुकरण किया। मध्यकाल से ही विदेशी आक्रमणताओं ने धर्म के विस्तारण के आधार पर भारतीय समाज में अपने धर्म का प्रवेश सुनिश्चित किया। और कहीं न कहीं धन–प्राप्ति के साथ–साथ धर्म

का विस्तार करना भी उद्देश्य रहा । जिसके चलते अनेक विदेशी आक्रमणकारी न केवल पैसे के बल पर दूसरे धर्म के मतावलंबियों का धर्म–परिवर्तन करवाते थे अपितु मृत्युदंड का भय भी दिया जाता था। जिसके चलते ना तो ऐसा वर्ग अपने पुराने धर्म, रीति–नीति का अनुसरण कर पाता था और न ही नए धर्म का। इससे समाज में अराजकता का माहौल पैदा हुआ। जिसने भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग की धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को प्रभावित किया। आपसी प्रेम और विश्वास की जगह धोखा और बेईमानी अपनी पकड़ मजबूत कर रही थी। सामाजिक रीतियाँ कोरे अंधानुकरण के चलते कुरीतियों में बदल गई थी। हिन्दू–मुस्लिम वैनमस्य को बढ़ावा देकर अंग्रेज ईसाई–धर्म के प्रचार–प्रसार में लीन थे। लेकिन अंग्रेजों द्वारा लागू किए शिक्षा के नए स्त्रोतों ने भारतीय जनता को सांस्कृति पुनर्जागरण को दिशा में अग्रसर किया। इटली के 'रेनेसा' का प्रभाव भारतीय जनता पर भी हुआ। जिसकी परिणति स्वरूप विभिन्न सामाजिक आंदोलनों एवं सस्थाओं का उदय हुआ और इन आन्दोलनों एवं संस्थाओं ने एक बार फिर भारतीय जनता को धर्मगत विभेदों से ऊपर उठ राष्ट्रीय उत्थान के लिए एकजुट किया।

भारत की सांस्कृतिक उन्नति का पता इसी बात से चला जाता है कि भारत में शिक्षा का इतिहास काफी पुराना है। अंग्रेजों के भारत आगमन से पहले भारतीय शिक्षा व्यवस्था विश्व में प्रमुख मानी जाती थी। 19वीं शताब्दी तक पूरे यूराप के किसी भी देश में शिक्षा का इतना प्रचार–प्रसार नही था, जितना भारत में था। तत्कालीन समय में भारत में सामान्य जनता को शिक्षा देने के लिए चार प्रकार की संस्था थी 1. ब्राह्मण अध्यापन 2. सभी मुख्य नगरों मं उच्च संस्कृति शिक्षा के लिए टोल या विद्यापीठों की स्थापना की गई थी। 3. उर्दू और फारसी शिक्षा के लिए जगह–जगह मकतब और मदरसे थे, जिनमें लाखों हिन्दू और मुसलमान विद्यार्थी साथ–साथ शिक्षा पाते थे। 4. इन सबके अतिरिक्त देश के छोटे–छोटे गाँव में बालकों की शिक्षा के लिए कम से कम प्राथमिक पाठशाला होती थी।''[18] ग्राम पंचायत का यह कर्त्तव्य होता था कि वे अपने गाँव में लोगों की शिक्षा का सुचारू प्रबंध करें और वे इस संबंध में सदैव प्रयत्नशील भी रहती थी। भारत में शिक्षा एवं शिक्षित व्यक्तियों को सदैव सम्मानीय माना जाता रहा है, क्योंकि समाज को सही पथ सही राह ले जाने का दायित्व इन्हीं का होता था। इस संबंध में अंग्रेज विद्वान एडम का कहना था – ''संस्कृत विद्यालयों में शिक्षक और विद्यार्थी हिन्दू समाज की निखरी गई प्रज्ञा है, और उनका वही सम्मान है और वही प्रभाव है जो अभ्यासपूर्वक प्रज्ञा प्राप्त करने वालो लोगों में हमेशा होता है। देशी समाज

की उसकी वास्तविक लय, रूप और चरित्र देने में जितना प्रभाव इन शिक्षित लोगों के समूह का है उससे अधिक समाज के और किसी वर्ग का नहीं है।''[19]

भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता की पुष्टि इंग्लैंड की संसद के प्रसिद्ध सदस्य केर हार्डी का 'इंडिया' में मैक्समूलर के सरकारी लेखों के आधार पर और एक मिशनरी रिपोर्ट के आधार पर लिखी गई पुस्तक से हो जाती है। इस पुस्तक में हार्डी ने बंगाल पर अंग्रेजों के कब्जा होने से पहले वहाँ की शिक्षा संबंधी व्यवस्थाओं के बारे में लिखा है कि उस समय बंगाल में 80,000 देशी पाठशालाएँ थी यानि सूबे की कुल आबादी के हर चार सौ मनुष्यों के पीछे एक पाठशाला मौजूद थी। यहीं नहीं बल्कि भारतीय शिक्षा पद्धति का अनुकरण करने की सिफारिश कम्पनी के डायरेक्टरों ने जून 1884 को बंगाल के गवर्नर के नाम पत्र में भेजी थी जिसमें लिखा है कि – ''शिक्षा का तरीका बहुत पुराने समय से भारत में वहाँ के आचार्यों के अधीन जारी है। उसकी सबसे बड़ी तारीफ यही है कि रेवेरेण्ड डॉक्टर एण्ड्रबेल के अधीन, जो मद्रास में पादरी रह चुका है, वही तरीका इस देश (इंग्लैंड) में भी प्रचलित किया गया है अब हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं में इसी तरीके के अनुसार शिक्षा दी जाती है, क्योंकि हमें विश्वास है कि इससे भाषा सिखाना बहुत सरल और सिखना बहुत सुगम हो जाता है ..... कहा जाता है कि हिन्दुओं की इस अत्यंत प्राचीन और लाभदायक संस्था को सल्तनतों के उलट फेर से कोई हानि नहीं पहुँचा सके।''[20]

भारत में अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत के कुछ प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों जैसे 'नालन्दा', 'तक्षशिला', आदि में धर्म, वेद, दर्शन, ज्योतिष, गणित, चिकित्सा, कला, चित्रकारी, मूर्तिकला तथा अन्य भाषाओं के ज्ञान से संबंधित 16 विषयों का अध्ययन–अध्यापन किया जाता था। जिससे भारतीय धर्म और संस्कृति की श्रेष्ठता का स्वयं भान हो जाता है। इस संबंध में अंग्रेज विद्वान फोर्ब्स ने लिखा है कि – ''बनारस और हिन्दुस्तान के विभिन्न भागों में हिन्दू महाविद्यालयों और ब्राह्मणीय विद्या मंदिरों को देखकर बहुत हर्ष होता हैं, वे उपयोगी संस्थाएँ है और भले ही उनका लाभ खास–खास जातियों और खास–खाास कोटियों के लोगों तक सीमित हो, फिर भी वे उस हद तक इन विषयों को हिन्दुओं के बीच आवश्यक माना जाता है।''[21] लेकिन अंग्रेजी स्वार्थ–परता का पर्दाफाश करते हुए इतिहास लेखक लडलो ने ''ब्रिटिश भारत में इतिहास'' नामक पुस्तक में भारतीय शिक्षा और संस्कृति को जानबूझ कर खत्म करने की अंग्रेजी नीतियों के बारे में लिखा है – ''हर ऐसे हिन्दू गाँव में जिसका पुराना संगठन अभी तक कायम है, मुझे विश्वास है कि आमतौर पर सब

बच्चे पढ़ना–लिखना और हिसाब करना जानते हैं, किन्तु जहाँ हमने ग्राम–पंचायत का नाश कर दिया है। जैसे बंगाल में वहाँ ग्राम पंचायत के साथ–साथ गाँव की पाठशाला भी लोप हो गई।''[22]

इस समय सोए हुए भारत में धार्मिक–सामाजिक सुधार हेतु विभिन्न संस्थाओं का जन्म हुआ जिनमें प्रमुख है – प्रार्थना समाज (1867 ई0 में बम्बई में आत्मारंग पाण्डुरंग), 1875 ई0 में बंबई में दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज, 1895 ई0 में वाराणसी में पं0 दीन दयाल शर्मा द्वारा निर्मित 'सनातन धर्म सभा', 'बेलूर में 1897 ई0 में विवेकानंद द्वारा संस्थापित 'रामकृष्ण–मिशन' आदि संस्थाएँ धर्म, समाज और संस्कृति में आए परिवर्तनों या यूँ कहें अशुद्धियों को दूर करने के लक्ष्य के साथ जन्मी । इन संस्थाओं ने न केवल धर्मगत अपितु सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में व्याप्त असंगतियों को दूर करने के लिए भी प्रयास किया। आर्य समाज ने जहाँ वैदिक संस्कृति और भारत के स्वर्णिम अतीत का गुणगान कर लोगों में सांस्कृतिक चेतना का संचार किया वहीं आंशिक पाश्चात्य प्रभाव से उदित ब्रह्मसमाज, थियोसोफिकल सोसायटी (1882 ई0), रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं ने अस्पृश्यता और धार्मिक अलगाववाद की रेखा को मिटाकर पूरे देश को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में पिरोने का प्रयास किया। द्विवेदी–युग में भारतीय समाज पर पाश्चात्य प्रभाव का वर्णन करते हुए डॉ0 उर्मिला गुप्ता लिखती है कि – ''प्राचीन अन्धविश्वासी दृष्टिकोण समाप्त हो गया तथा भारतवासियों के रहन–सहन और वेश–भूषा में परिवर्तन आ गया। इस युग में प्राचीन मान्यताएँ ही समाप्त हो रही थी, परन्तु नवीन मान्यताओं को जनता पूरी तरह से अपना नहीं पा रही थी, इसलिए संस्कृति में एक प्रकार की अव्यवस्था–सी फैली हुई थी।''[23]

भारत के सांस्कृतिक पतन को रोकने में 1810 से 1916 ई0 तक की कालावधि में प्रयासरत विभूतियों ने कई भूमिकाओं के निर्वहन द्वारा अपने इष्ट को प्राप्त किया। गौरतलब है कि इस युग के अधिकांश लेखक समाज सुधारक के साथ–साथ पत्रकार, संपादक और राष्ट्रीय–जागृति से संबंधित संस्थाओं के कार्यवाहक भी थे। वे प्राचीन गौरव–गान के साथ–साथ समकालीन परिदृश्य में घटित परिवर्तनों के साथ समन्वयवादी दृष्टिकोण का निर्वतन करना चाहते थे। इसलिए वे नितांत भारतीय अतीत का स्थानांतरण नहीं चाहते थे अपितु वक्त की जरूरतों के साथ आधुनिक होने से भी गुरेज नहीं करते। इस संबंध में पश्चिमी विद्वानों के प्रभाव को इंगित करते हुए डॉ0 परशुराम शुक्ल विरही का मानना है कि – ''इस युग में काव्य में सांस्कृतिक पुनरूत्थान और अतीत गौरवगाथा को जो प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, उसके मूले में भी अंग्रेजी का प्रभाव ही विद्यमान है।

मैक्समूलर, कोलब्रुक, विलियम जोन्स आदि पाश्चात्य विद्वानों ने वैदिक साहित्य और प्राचीन भारतीय साहित्य के संबंध में अपनी जो शोधें प्रस्तुत की उनसे एतद्देशीय विद्वान लाभान्वित हुए और अपनी प्राचीन संस्कृति और साहित्य के प्रति उनकी गौरव–भावना जागृत हुई। इसी प्रकार गेटे, शैली आदि यूरोपीय कवियों ने भारत के उपनिषदों और कालिदास आदि संस्कृत के महाकवियों की जो महत्व–घोषणा की, उससे प्रभावित भारतीय साहित्यकारों ने भी अपने देश के गौरवशाली अतीत को सम्मान की अंजलि दी।''[24]

तत्कालीन धार्मिक परिदृश्य में जहाँ एक ओर सामाजिक एवं धार्मिक सुधार संस्थाएँ कार्यरत थी वहीं दूसरी और हिन्दू–मुस्लिमों में विभेद की गहराती खाई का अंग्रेजी शासन की चुनोतियाँ थी। जिसमें बंगाल–विभाजन, नौकरियों में धर्मगत–भेदभाव, खड़ी बोली–उर्दू भाषा विवाद, कांग्रेस से मुस्लिमों के अलगाव से जन्मी 'मुस्लिम लीग' धार्मिक सौहार्द को कम करने और दंगों के नियोजन के बारे में कर्मेन्दु शिशिर लिखते हैं कि – ''भारत में जो पशुधन था, वह पशुधन गुलाम भारत में भी दुनिया के कई देशों से बहुत ज्याद था। ईसाई धर्म को सत्ता से संरक्षण प्राप्त था। उसके प्रसार को जबरदस्त कोशिशें की गई थी, ढेर सारी सुविधाएँ दी गई थी। उसके प्रसार के लिए हिन्दू–मुसलमानों को लड़ाना था, एक–दूसरे से अलग करना था। साम्प्रदायिक दंगे होते ही नहीं थे ..... इनकी शुरूआत तो 1885 में कांग्रेस स्थापना के बाद होती है, भारतेन्दु के मरने के बाद। ..... विवाद तो सुनियोजित तरीके से पैदा किया गया, कराया गया। क्यों कराया गया? इसलिए कि सन् 1857 में दोनों समुदायों ने मिलकर जबरदस्त राष्ट्रवादी धारा पैदा कर दी थी।''[25]

इस प्रकार भारत के समृद्ध धार्मिक एवं सांस्कृतिक सामंजस्य को अपने स्वार्थ के चलते अंग्रेजों ने वैनमस्य में बदल डाला। जिसकी मुखर अभिव्यक्ति न केवल भारतीय विद्वानों ने की, अपितु पाश्चात्य विद्वानों के अनेक शोधपरक कार्यों से हुई। इस प्रकार हम समझ सकते है कि किस तरह से अंग्रेजों ने भारत के शोषण चक्र को तीव्रतम करने के लिए यहाँ के प्राकृतिक संसाधनों, मानवीय श्रम और सांस्कृतिक समृद्धि का दमन किया।

संदर्भ –

1. रजनी कोठारी, भारत में राजनीति, अनुवादक अशोक जी, ओरिएण्ट लॉग मैन लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ0 28

2. मार्क्स, दफ्यूचर रेवोल्यूशन ऑफ ब्रिटिशरूल इन इण्डिया, न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून, जुलाई 25, 1858

3. रामविलास शर्मा, महान जन क्रांति और सिपाही, उद्भावना पत्रिका,पृ0 331–338

4.डॉ0 वी.डी. महाजन तथा आर.आर. सेठी, भारत का संवैधानिक इतिहास (1957 ई0), पृ0 30–31

5. रजनी पामदत्त, आज का भारत, ग्रंथशिल्पी, संस्करण, 2004, पृ0 25

6. रजनी पामदत्त, आज का भारत, ग्रंथशिल्पी, संस्करण, 2002, पृ0 160

7. 'रामराज्य' (कानपुर) 1 अक्टूबर, 1956, पृ0 प्रतापनारायण मिश्र का 'ब्राह्मण–पत्र' लक्ष्मी कांत त्रिपाठी

8. लार्ड रिपन (1880–1884) के कार्यकाल में कौंसिल के सदस्य सी.पी. इल्बर्ट ने प्रस्तावित विधेयक में कवेनैण्टेड सिविल सर्विस में अंग्रेज एवं भारतीय सदस्यों के बीच अनुचित भेदभाव को दूर करने की बात पर जोर दिया था।

9. डॉ0 रवीन्द्र सहाय वर्मा, हिन्दी–काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ0 66

10. डॉ0 लक्ष्मीनारायण गुप्त, हिन्दी–भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन, पृ0 192

11. वैभव सिंह, इतिहास और राष्ट्रवाद, पृ0 43–44

12. के.एन.पणिक्कर, कल्चर, आइडियालॉजी, हैजेमनी, इंटलैक्चुअल एंड सोशल कान्शियसनेस इनकोलोनियल इंडिया में उद्धत, पृ0 124

13. डॉ0 सत्या एम राय, भारत में उपनिवेशवाद, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, वि. वि.तृ.सं, 2004, पृ0 45

14. बी.एफ. कैलबर्टन, दि अवेकनिंग ऑफ अमेरिका (सन् 1939), पृ0 16–17, उल्लेख भारत का मुक्ति संग्राम, अयोध्या, प्रसाद सिंह, मैकमिलन इण्डिया दिल्ली, प्र.सं. 1977, पृ0 19

15. भारत का इतिहास, पृ0 468

16. सखाराम गणेश, देउस्कर, देशेर कथा, कलाकत्ता, पृ0 117, उल्लेख, भारत का मुक्ति–संग्राम, अयोध्या सिंह, पृ0 21

17. भारत का मुक्ति–संग्राम, अयोध्या सिंह, पृ0 24

18. भारत में अंग्रेजी राज, भाग–2, सुंदर लाल, प्रकाशन विभाग और प्रसारण मंत्रालय, भारत

19. भारत में अंग्रेजी राज, भाग–2, सुंदर लाल, प्रकाशन विभाग, पृ0 682

20. Letter from the court of Directors of the governor-general in council of Bengali dated 3rd June, 1884, उल्लेख भारत में अंग्रेजी राज, भाग–2....., पृ0 683

21. ओरिएंटल मेमायर्स, जे0 फोर्ब्स जिल्द, लंदन, संन 1834, पृ0 471, उल्लेख औपनिवेशिक भारत में सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ, के0 एन पणिक्कर, ग्रंथ शिल्पी प्रा0 लि0, नई दिल्ली, प्र0सं0 2003, पृ0 56

22. उल्लेख भारत में अंग्रेजी राज, भाग–2, सुंदर लाल प्रकाशन विभाग, पृ0 675

23. हिन्दी–कथा साहित्य के विकास में महिलाओं का योग, डॉ0 उर्मिला गुप्ता, पृ0 19, उल्लेख ऑ0 महावीर प्रसाद द्विवेदी, व्यक्तित्व एवं कृर्तत्व, शैव्या झा, अनुपम प्रकाशन, प्र0सं0 1977, पृ0 12

24. आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद, डॉ0 परशुराम शुक्ल विरही, पृ0 106, उल्लेख महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ0 13

25. हिन्दी नवजागरण और जातीय गद्य परम्परा, कर्मेन्दु शिशिर, आधार प्रकाशन पचंकूला, प्र0सं0 2008, पृ0 51